अध्याय 3: ग्रामीण क्षेत्र पर शासन चलाना

कंपनी दीवान बन गई

12 अगस्त 1765 को मुग़ल बादशाह ने ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल का दीवान तैनात किया। दीवान के तौर पर कंपनी अपने नियंत्रण वाले भूभाग के आर्थिक मामलों की मुख्य शासक बन गई थी।

➡ अब कंपनी को अपने खर्चों के लिए आमदनी जुटाने और व्यापार चलाने के साथ-साथ उन लोगों को भी शांत रखना था जो गाँव-देहात में पहले शासन कर चुके थे और जिनके पास अभी भी काफ़ी ताकत और सम्मान था।

कंपनी की आमदनी

1765 से पहले कंपनी ब्रिटेन से सोने और चाँदी के बदले में भारत से सामान (सूती और रेशमी कपड़ा आदि) ख़रीदती थी। अब बंगाल में इकट्ठा होने वाले पैसे से ही निर्यात के लिए चीज़ें खरीदी जाने लगी।

➡ इस कारण बंगाल की अर्थव्यवस्था गहरे संकट में चली गई। कारीगरों को अपनी चीज़ें बहुत कम कीमत पर कंपनी को जबरन बेचनी पड़ती थीं। किसान अपना लगान नहीं चुका पा रहे थे। **1770 में पड़े अकाल नें बंगाल में** एक करोड़ लोगों (लगभग एक-तिहाई आबादी) को मौत की नींद सुला दिया।

खेती में सुधार की ज़रूरत

स्थायी बंदोबस्त

1793 में स्थायी बंदोबस्त चार्ल्स कॉर्नवालिस द्वारा बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस और उत्तरी कर्नाटक में लागू किया गया। राजाओं और तालुकदारों को ज़मींदारों के रूप में मान्यता दी गई। उनका काम किसानों से लगान वसूल कर कंपनी को राजस्व देना था। जो स्थायी रूप से तय कर दी गई थी।

स्थायी बंदोबस्त में समस्या

- कंपनी को लगता था कि स्थायी राजस्व होने से ज़मींदार ज़मीनों में सुधार के लिए खर्च करेंगे। लेकिन ज़मींदार ऐसा नहीं कर रहे थे। क्योंकि कंपनी द्वारा तय किया गया राजस्व बहुत ज़्यादा था। जो ज़मींदार राजस्व चुकाने में विफल हो जाता था उसकी ज़मींदारी छीन ली जाती थी।
- 19वीं सदी के पहले दशक तक बाज़ार में कीमतें बढ़ीं और धीरे-धीरे खेती का विस्तार होने लगा। इससे ज़मींदारों की आमदनी में तो सुधार आया लेकिन कंपनी को कोई फ़ायदा नहीं हुआ। अभी भी ज़मींदारों को ज़मीन में सुधार की परवाह नहीं थी।
- दूसरी तरफ़, गाँवों में किसानों को लगान चुकाने के लिए अक्सर महाजन से कर्ज़ा लेना पड़ता था। लगान न चुकाने पर उसे पुश्तैनी ज़मीन से बेदख़ल कर दिया जाता था।

Study Learning Notes

महालवारी बंदोबस्त

बंगाल प्रेज़िडेंसी के उत्तर-पश्चिमी प्रांतों के लिए होल्ट मैकेंजी नामक अंग्रेज़ ने महालवारी बंदोबस्त तैयार की जिसे 1822 में लागू किया गया।

- इसमें गाँव के एक-एक खेत के अनुमानित राजस्व को जोड़कर **हर गाँव या ग्राम समूह (महाल)** से वसूल होने वाले राजस्व का हिसाब लगाया जाता था।
- राजस्व स्थायी रूप से तय न करके इसमें समय-समय पर संशोधनों की गुंजाइश रखी गई।
- राजस्व इकट्ठा करके कंपनी को अदा करने का काम ज़मींदार की बजाय गाँव के मुखिया का था।

मुनरो व्यवस्था (रैयतवारी व्यवस्था)

कैप्टन एलेक्ज़ेंडर रीड ने टीपू सुल्तान के कब्ज़े किए गए कुछ इलाकों में रैयतवारी व्यवस्था को आज़मा कर देख लिया था। टॉमस मुनरो ने इस व्यवस्था को विकसित किया और धीरे-धीरे पूरे दक्षिणी भारत पर लागू कर दिया।

➡ रीड और मुनरो का मानना था कि दक्षिण में परंपरागत ज़मींदार नहीं थे। इसलिए उन्हें सीधे किसानों (रैयतों) से ही बंदोबस्त करना चाहिए जो पीढ़ियों से ज़मीन पर खेती करते आ रहे हैं। राजस्व आकलन से पहले उनके खेतों का सर्वेक्षण किया जाता था।

Study Learning Notes

रैयतवारी व्यवस्था में समस्या

- ज़मीन से होने वाली आमदनी बढ़ाने के चक्कर में राजस्व अधिकारियों ने बहुत ज़्यादा राजस्व तय कर दिया था।
- राजस्व न चुका पाने के कारण रैयत गाँवों से भाग रहे थे। इससे बहुत सारे क्षेत्रों में गाँव वीरान हो गए।

यूरोप के लिए फ़सलें

18वीं सदी के आख़िर तक कंपनी ने अफ़ीम और नील की खेती पर पूरा ज़ोर लगा दिया था। इसके अलावा देश के विभिन्न भागों में किसी न किसी फ़सल के लिए किसानों को मज़बूर किया गया। जैसे: **बंगाल में पटसन, असम में चाय, संयुक्त प्रांत में गन्ना, पंजाब में गेहूँ, महाराष्ट्र व पंजाब में कपास, मद्रास में चावल।**

भारतीय नील की माँग क्यों थी?

नील का पौधा मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय इलाकों में ही उगता है। 13वीं सदी तक इटली, फ्रांस और ब्रिटेन के कपड़ा उत्पादक कपड़े की रँगाई के लिए भारतीय नील का इस्तेमाल कर रहे थे जिसकी कीमत बहुत ऊँची होती थी।

➡ इसलिए यूरोपीय कपड़ा उत्पादकों को बैंगनी और नीले रंग बनाने के लिए वोड नामक पौधे पर निर्भर रहना पड़ता था। वोड पौधा (शीतोष्ण क्षेत्र) उत्तरी इटली, दक्षिणी फ्रांस व जर्मनी और ब्रिटेन के कई हिस्सों में उगता था।

मगर कपड़े को रँगने वाले तो नील को ही पसंद करते थे। नील से बहुत चमकदार नीला रंग मिलता था जबकि वोड से मिलने वाला रंग बेजान और फीका होता था।

➡ 17वीं सदी तक आते-आते यूरोपीय कपड़ा उत्पादकों ने नील के आयात पर लगी पाबंदी में ढील देने के लिए अपनी सरकारों को राज़ी कर लिया। कैरीबियाई द्वीप समूह स्थित सेंट डॉमिंगयु में फ्रांसीसी, ब्राजील में पुर्तगाली, जमैका में ब्रिटिश और वेनेजुएला में स्पैनिश लोग नील की खेती करने लगे। उत्तरी अमेरिका के भी बहुत सारे भागों में नील के बाग़ान सामने आ गए थे।

➡ ब्रिटेन में औद्योगीकरण का युग आने से कपास उत्पादन में भारी इज़ाफ़ा हुआ। कपड़ों की रँगाई की माँग और तेज़ी से बढ़ने लगी। इसी दौरान वेस्टइंडीज़ और अमेरिका से मिलने वाली आपूर्ति अनेक कारणों से बंद हो गई। 1783 से 1789 के बीच दुनिया का नील उत्पादन आधा रह गया था। **इस कारण 18वीं सदी के आख़िर तक भारतीय नील की माँग और बढ़ गई**।

भारत में ब्रिटेन की बढ़ती दिलचस्पी

18वीं सदी के आख़िरी दशकों से ही बंगाल में नील की खेती तेज़ी से फैलने लगी थी। 1788 में ब्रिटेन द्वारा आयात किए गए नील में भारतीय नील का हिस्सा केवल लगभग 30% था। जबकि 1810 तक यह 95% हो चुका था।

➡ नील का व्यापार फैलने पर कंपनी केअफ़सर और व्यावसायिक एजेंट नील के उत्पादन में पैसा लगाने लगे। भारी मुनाफ़े की उम्मीद में स्कॉटलैंड और इंग्लैंड से बहुत सारे लोग भारत आ गए और उन्होंने नील के बाग़ान लगा लिए। जिनके पास पैसा नहीं था उन्हें कंपनी और नए-नए बैंक कर्ज़ा देने को तैयार रहते थे।

नील की खेती कैसे होती थी?

निज खेती

इसमें बाग़ान मालिक खुद अपनी ज़मीन या अपनी ख़रीदी हुई ज़मीन या दूसरे ज़मींदारों से भाड़े पर ली हुई ज़मीन पर मजदूरों द्वारा नील की खेती करवाते थे।

Study Learning Notes

निज खेती की समस्याएँ

- नील की खेती करने के लिए उपजाऊ ज़मीन और बड़े-बड़े भूखंडों की ज़रूरत होती थी।
- फैक्ट्री के इर्द-गिर्द पट्टे पर ज़मीन लेने के प्रयास में वहाँ के किसानों से अक्सर टकराव और तनाव पैदा हो जाता था।
- मज़दूरों की ज़रूरत भी सबसे ज़्यादा उसी समय होती थी जब किसान धान की खेती में व्यस्त रहते थे।
- बड़े पैमाने पर निज खेती के लिए बहुत सारे हल-बैलों की भी ज़रूरत थी। हल को खरीदना और उनका रखरखाव एक बड़ी समस्या थी।
- जिस समय नील उत्पादकों को ज़रूरत होती थी उसी समय किसानों के हल-बैल भी चावल के खेतों में व्यस्त रहते थे।

Study Learning Notes

रैयती व्यवस्था

इसमें बाग़ान मालिक रैयतों के साथ एक अनुबंध करते थे। अनुबंध पर दस्तख़त कर देने पर उन्हें नील उगाने के लिए कम ब्याज पर बाग़ान मालिकों से नक़द कर्ज़ा मिल जाता था।

- रैयत को अपनी कम से कम 25% ज़मीन पर नील की खेती करनी होती थी।
- बाग़ान मालिक बीज और उपकरण मुहैया कराते थे जबकि मिट्टी को तैयार करने, बीज बोने और फ़सल की देखभाल करने का काम काश्तकारों का होता था।
- कटाई के बाद फ़सल बाग़ान मालिक को सौंप दी जाती थी और रैयत को नया कर्ज़ा मिल जाता था।
- समय के साथ किसानों को समझ आया कि उन्हें नील की बहुत कम कीमत मिलती थी और कर्ज़ों का सिलसिला कभी ख़त्म ही नहीं होता था।

➡ नील की जड़ें बहुत गहरी होती थीं और वह मिट्टी की सारी ताकत खींच लेती थीं। नील की कटाई के बाद वहाँ धान की खेती नहीं की जा सकती थी फिर भी बाग़ान मालिक चाहते थे कि किसान अपने सबसे बढ़िया खेतों में ही नील की खेती करें।

नील विद्रोह और उसके बाद

मार्च 1859 में बंगाल के हजारों रैयतों ने नील की खेती से इनकार कर दिया। विद्रोह फैलने पर लगान चुकाने से भी इंकार कर दिया।

➡ वे तलवार, भाले और तीर-कमान लेकर नील की फैक्ट्रियों पर हमला करने लगे। उनके एजेंटों की पिटाई की गई। औरतें अपने बर्तन लेकर लड़ाई में कूद पड़ीं। इस बग़ावत में स्थानीय ज़मींदारों और मुखियाओं ने रैयतों का साथ दिया।

➡ **1859 की सर्दियों में लेफ्टिनेंट गवर्नर ने बग़ावत वाले इलाके का दौरा किया।** बरसात में **मजिस्ट्रेट ऐशले ईडन ने एक नोटिस जारी किया** जिसमें कहा गया था कि रैयतों को नील के अनुबंध मानने के लिए मज़बूर नहीं किया जाएगा।

➡ जैसे-जैसे विद्रोह फैला, कलकत्ता के पढ़े-लिखे लोग भी नील जिलों की ओर चल पड़े। उन्होंने रैयतों की दुर्दशा, बाग़ान मालिकों की ज़ोर-ज़बरदस्ती और अत्याचारी नील व्यवस्था के बारे में लिखा। इस बग़ावत से परेशान सरकार को बाग़ान मालिकों की रक्षा के लिए सेना बुलानी पड़ी।

नील उत्पादन व्यवस्था की जाँच के लिए एक नील आयोग बनाया गया। इस आयोग के अनुसार :-

- बाग़ान मालिक दोषी पाए गए। इनकी ज़ोर-ज़बरदस्ती लिए आलोचना की गई।
- नील की खेती रैयतों के लिए फायदे का सौदा नहीं है।
- आयोग ने रैयतों से कहा कि वे मौजूदा अनुबंधों को पूरा करें लेकिन आगे से वे चाहे तो नील की खेती बंद कर सकते हैं।

Study Learning Notes

➡ इसके बाद अब बाग़ान मालिक बिहार में नील का उत्पादन फैलाने में सफल हो रहे थे। बिहार के एक किसान द्वारा बुलाने पर, **चंपारण में 1917 में गांधी जी ने नील बाग़ान मालिकों के ख़िलाफ़ चंपारण आंदोलन की शुरुआत की थी।**